A First EPQRST Journal-www.jahnavisanskritejournal.com, Issue-17th, Vol.-V, 14.1.14

ISSN 976-8645

वैदिक साहित्य : काव्य तत्त्व

कल्पना शर्मा

कूटशब्द *अथर्ववेद, वैदिक साहित्य, काव्य, रस, छन्द, अलंकार।*

भारतीय अनुचिन्तन की प्रारम्भिक अभिव्यक्ति वेदों से हुई है। वेद काव्य है अथवा वेद में काव्यतत्व भी है यह विमर्श योग्य है। अस्तु वेद एवं काव्य के अन्तर्सम्बन्ध को नकारा नही जा सकता है। वेद में काव्य के शब्द शक्ति, छन्द, अलंकार रस आदि तत्वों का बहुशः प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। प्रकृत शोधपत्र में इन्हीं तत्वों का अनुशील प्रस्तुत है।

वेद का शाब्दिक अर्थ है 'ज्ञान'। वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य है। वेद से सम्बन्द्ध साहित्य को वैदिक साहित्य कहा जाता है। साहित्य का शाब्दिक अर्थ है-शब्द और अर्थ का परस्पर विशिष्ट प्रकार का सम्बन्ध-'साहितयोर्भाव: साहित्यम्' यह सम्बन्ध शाश्वत है। कालान्तर में साहित्य शब्द काव्य के नाम से भी कहा जाने लगा। 'अनन्ता वै वेदा:[1] यह ब्राह्मण वचन वेदज्ञान की अनन्ता के मर्म को प्रदर्शित करता है। मनु ने भी कहा है-'सर्वं वेदात्प्रसिध्यति' वेद से सब विद्याओं की सिद्धि होती है। वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्यिक ग्रंथ है। इसमें विभिन्न देवताओं की स्तुतियों का संग्रह है। धार्मिक परम्परा से सम्बन्द्ध होने के कारण प्राचीन काल में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण से इसका अध्ययन किया गया। वेदों में बहुत से ऐसे तत्त्व हैं जिन्हें काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के सुंदर उदाहरण के रूप में गृहीत किया जा सकता है।

साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से वैदिक वाङ्मय की गुणवत्ता असन्दिग्ध है। डॉ. वी. राघवन् ने कहा है-कविता के जो बीज ऋग्वेद में बोये गए हैं, वे ही पुष्प और कलियों के रूप में बाद के संस्कृत के लौकिक साहित्य में मिलते हैं। वाल्मीकि व्यास, कालिदास, भवभूति आदि संस्कृत भाषा के कवियों की कविता वैदिक कविता से निश्चय रूप से प्रभावित है। वेद स्वयं काव्य रूप है और उसमें काव्य के संपूर्ण तत्त्व पाये जाते हैं। काव्य-सौंदर्य के आधायक रस, भाव, गुण, रीति, अलंकार आदि सभी तत्त्व मूलरूप में वेद में प्राप्त होते हैं।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र को वेद से प्रतिपादित किया है। नाह्यशास्त्र की वैदिक उपजीव्यताको

ISSN 976-8645

उद्‌घाटित करते हुए भरतमुनि कहते हैं कि–

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।

इस पद्य के अनुसार ऋग्वेद से संवादों का सामवेद से गीतों का, यजुर्वेद से अभिनयों का, अथर्ववेद से रसो ग्रहण कर नाट्य–रचना सम्पन्न हुई। इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिए कि जिस वेद से जिस तत्त्व का ग्रहण किया है अन्य वेद में उस तत्त्व की सत्ता नहीं है। अभिप्राय यह है कि अथर्ववेद से रसों को ग्रहण किया गया, अथर्ववेद में बहुत से मंत्र ऋग्वेदीय है। इसलिए ऋग्वेद में भी रस–प्रसंग होने चाहिए। एक अन्य भी दृष्टि से वेद काव्य स्वरुप ही है। वह है प्रयोजन की दृष्टि। कतिपय मंत्रों पर विचार करने से यह प्रतीत होता है कि संभवतः उनकी रचना के प्रयोजन वही हैं जो आलंकारिकों ने काव्य के बताये हैं। 'शिवेतरक्षतये' वैदिक कविता का मुख्य प्रयोजन है उसका कल्याणकारी होना। 'शुंभुवं मन्तम्' 'वोचेम शन्तमं हृदे' 'आदि ऋचाओं से इस प्रयोजन की ओर संकेत किया गया है। कल्याणकारिता के भाव का द्योतन–''अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि। वैदिक साहित्य का एक और प्रयोजन आनन्द की प्राप्ति कराना है। वेद केवल कल्याणकारी ही नहीं आह्लादकारी भी है। 'हृद्‌भिर्मन्द्रेभिरीमहे' 'स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शंतमः'। आलंकारिकों ने वाङ्मय का प्रभुसम्मित, सुहृत्सम्मित और कान्तासम्मित रूप में त्रिविध विभाजन किया है। वेद के सुहृत्सम्मितत्व के विषय में उपनिषद की एक प्रसिद्ध ऋचा उद्धरणीय है[2],

वेदमन्त्रों में साहित्यिक निधि का काव्यात्मक अध्ययन करने के प्रति पाश्चात्य तथा पौरस्त्य विद्वानों ने तत्परता दिखाई है। वैदिक काव्य अधिकांशतया मुक्तकात्मक हैं–इतिवृत्त से रहित, किन्तु विश्वनाथ के अनुसार वाक्यं रसात्मकं काव्यं'' एक वाक्य भी यदि रस युक्त है तो उसे काव्य माना जाता चाहिए। वैदिक वाङ्मय में अनेक ऐसे सरस प्रसङ्ग है, जिनमें रस–निष्पत्ति अनुभव होती है।

रस–निष्पत्ति और भाव–विभूति–

कविता कवि के भावों की अभिव्यक्ति है। भावाक्षिप्त हृदय की अभिव्यक्ति ही कविता का रूप धारण कर लेती है। ऋग्वेद के उषस् सूक्त में यत्रतत्र रति भाव की झलक देखने को मिलती है। ऋषियों ने उषा को एक सुंदर स्त्री का रूप देकर अपने कल्पनालोक में खड़ा किया है। उषा एक सुंदरी कन्या के रूप में दिखती है जो धीरे–धीरे मुस्कुराती हुई सूर्य के निकट जाती है। वह श्वेतवसन चरण किये हुये अपनी शरीरकान्ति से अंधकार को मिटाती हुई एक युवती रूप में दिखाई पड़ती है।[3]

श्रृंगार को संभोग और विप्रलम्भ रूप में द्विविध माना जाता है। अथर्ववेद में रतिभाव के उद्दीपक तत्त्वों का वर्णन हुआ है यथा–देवता लोग काम को भेजे जिससे यह कामार्ता स्त्री, मेरा प्रेमी सदैव मेरा स्मरण करता रहे, इस प्रकार कामना करती हुई सदैव परितृप्त रहे और मेरा ध्यान करती

ISSN 976-8645

रहे।

ऋग्वेद के पुरुरवा-उर्वशी संवाद में विप्रलम्भ श्रृंगार के हृदयद्रावक प्रसंग सन्निहित हैं। पुरुरवा-उर्वशी के प्रणय-प्रसंग की विडम्बना द्रष्टव्य है वे देवता जो युद्ध के समय अपने प्रतिद्वन्द्वी से अपनी रक्षा के लिए पुरुखा की शरण में आते थे, उर्वशीं उन्हीं देवताओं के पास जाना चाहती है, पुरुरवा को अकेले छोड़कर, इस निष्ठुर तथ्य को स्वयं उर्वशी के मुख से सुनकर पुरुरवा के हृदय में ग्लानि, घृणा, अवसाद, क्रोध और शोक कितनी ही भावनाएं एक साथ उठी होंगी। कोई सहृदय ही इसका अनुमान लगा सकता है। श्रृंगारकी भांति वेद में अन्य रसों की भी सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। इन्द्र की वीरता का वर्णन हुआ है। राष्ट्रभिवर्धन सूक्त में इन्द्र सूक्त में राष्ट्र-प्रेम के भाव का भी स्फुटन हुआ है। अथर्ववेद के पर्जन्य सूक्त (4.15.1, 7, 8) की कतिपय ऋचाओं में भय के भाव का चित्रण किया गया है। कहीं-कहीं मद आदि भावों का भी वेद में कुशलता से वर्णन हुआ है। एक सूक्त में सोमपान से मदोन्मत्त इन्द्र का इतना स्वाभाविक वर्णन हुआ है मानो ऋषि नशे में चूर किसी व्यक्ति का वर्णन कर रहा हो। इन्द्र कहते हैं कि मैंने अत्यधिक सोम पी लिया है। जिस प्रकार वायु वृक्षों को कंपाती है, उसी प्रकार सोम मुझे कंपा रहा है। इन काव्यप्रवृत्तियों का अध्ययन करने पर स्वत: बोध होता है कि वेद ही इनका उद्गम है। यही से ये सब काव्यपरम्परायें उद्भूत होकर संस्कृतकाव्य तक चली आई हैं।

शब्द-शक्तियाँ-

वैदिक काव्य को शास्त्रकारों ने सामान्यत: शब्द प्रधान यह है-तदनुसार इसमें अभिधा का प्राधान्य हो जाता है। यहाँ में अभिधा का विशेष महत्त्व नहीं होता, इसलिए ऋषि-कवि ने वेद में लक्षणा का स्थान-स्थान पर आश्रय लिया है। अन्य ग्रंथों में विद्यमान लाक्षणिक प्रवृत्ति को निरुक्तकार ने भी वर्णित किया है-''बहुभक्तिवादीनि हि ब्रह्माणानि'' लक्षणा से ओत-प्रोत वैदिक उदाहरण इस प्रकार है-''स्तेनं मन:, श्रृणोत ग्रावाण:'' इत्यादि। अभिधा से इनकी व्यवस्था नहीं की जा सकती है। पत्थर सुनें। यह कथन उन्मत्त सदृश लगता है। लक्षणा का आश्रय लेने पर इसकी व्याख्या ली जाएगी जिसे पत्थर भी तन्मयता से सुनते हैं फिर विद्वानों और सहृदयों की बात ही क्या।

साहित्यशास्त्रीय ग्रंथों में लक्षणा-निरुपण के ग्रंथों में आचार्यो ने 'सिंह माणवक:' गौर्वाहीक: आदि उदाहरणों की भाँति 'यजमान प्रस्तर:' आदित्यों यूप: इत्यादि वैदिक उदाहरण भी दिये हैं। वैदिक काव्य में व्यञ्जना के अस्तित्व को मीमांसक मान्यता नहीं देते हैं तथापि व्यञ्जना के छिटपुट उदाहरण मिल जाते हैं-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

ISSN 976-8645

तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनन्नन्यो अभिचाकशीति।[16]

अलंकार-सौष्ठव-

काव्य-शरीर शब्दार्थमय है तो उसमें सौंदर्यातिशय लाने के लिए अलंकारों की, जो वस्तुत: दो प्रकार के हैं-और अर्थालंकार। कभी शब्द में रमणीयता लाने के लिए उत्सुक रहता है तो कभी अर्थ में। वेदों में अनुप्रसा की छटा दर्शनीय है-

''विमन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासत:''

इसी प्रकार वेदों में यमक का भी दर्शन होता है। यथा-

अधशंसदु: शंसाभ्यां करेणानुकरेण च।

शब्दगत चारुता का दर्शन शब्दालंकारों में होता है, अर्थगत चारुता का अर्थालंकारों में होता है। कवि अपनी प्रतिभा द्वारा नवीन-नवीन अर्थों की प्रतीत कराता है। अर्थालंकारों में उपमा अग्रगव्य है। वेद के संदर्भ में उपमा का सर्वप्रथम विवेचन यास्क ने निरुपक्त में किया है। तदनुसार उपमावाचक निपात चार हैं-'इव', 'न', 'चित्', और 'नु' निरुक्तकार का अभिमत है-उपमा में अधिक गुण वाले अथवा अत्यंत प्रख्यात उपमान के साथ न्यून गुण वाले अथवा अल्प प्रसिद्ध उपमेय का सादृश्य प्रदर्शित किया जाता है-'ज्यायसा वा गुणेन प्रख्याततमेन वा कनीयासं वा अप्रख्यातं वा उपमिमीते। ऋग्वेद के उषस् सूक्त में उषस् की समानता रुपगर्विता लावव्यमयी नारी खड़ी होकर स्नान करने वाली युवती तथा सुंदर स्वभाव वाली प्रिया के साथ प्रदर्शित है। ब्राह्मण ग्रंथों में रूपक सृष्टि का आकर्षण भी दृष्टिगोचर होता है। वेदों में उतप्रेक्षा, अतिशयोक्ति, समसोक्ति, परिकर[4], विभावना[5] सम्वभावोक्ति[6] आदि अलंकारों का भी प्रचुर प्रयोग प्राप्त होता है।

शिक्षा[7] वेद पुरुष के पादरूप में छंद को स्वीकार करता है। छंद की महत्ता और व्यापकता इससे भी स्पष्ट हो जाती है कि वेद में कोई भी मंत्र बिना छंद के नहीं रह सकता। यहाँ 'ओम्' भी एक छंद है जिसका नाम है दैवी गायत्री क्योंकि देवी गायत्री में एक ही अक्षर होता है। इस एक अक्षर से लेकर 104 अक्षरों तक ऋषियों ने छंद का निर्धारण किया है। ऋग्वेद में सभी छंदों में त्रिष्टुप् की संख्या अधिक है। अथर्ववेद की एक ऋचा में सातों छंदों का क्रम से वर्णन हुआ है।

''गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्बृहतीपंक्तिस्त्रिष्टुप् जगत्यै''[8]

वस्तुत: गायत्री ही प्रथम छंद है, अत: वैदिकवाङ्मय में इसकी विशेष प्रशंसा की गई है।

''गायत्री गायते: स्तुतिकर्मण:

''गायतो मुखादुदपतदिति[9]

अथर्वेवेद में इसे वेदमाता कहा है। इन्द्र की स्तुतियाँ प्राय: गायत्री छंद में हैं-

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सते सोमे हवामहे।

स पाहि मध्वो अन्धस:।[10]

ISSN 976-8645

इसी प्रकार उष्णिक्[11], अनुष्टुप्[12], बृहती इत्यादि छंद भी प्राप्त होते हैं।

पदावृत्ति और अक्षरावृत्ति जन्य काव्य-लात्यि

वैदिक साहित्य में पदावृत्ति और अक्षरावृत्तिजन्य है, उसे समझने के लिए पूर्वापर सूक्तों की अपेक्षा गीतिकाव्य के लिए आवश्याक सभी तत्त्व उन सूक्तों में नहीं होते परंतु कुछ सूक्त ऐसे हैं जो गीतिकाव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। इनमें भावों की कोमलता, संगीतात्मक सौंदर्य कुछ दर्शनीय है। घुलोक में सुंदरी उषा के अवभासित स्वरूप उसके नित-नूतनपन तथा लोक-विमोहिनी उसकी घटा से ऋषियों के चित्र को आकृष्ट किया। ऋषि हृदय के संख्यातीत उद्‌गारों को उसी भाव से प्रकट करते थे, जिस प्रकार से अनुभव करते थे। कभी ऋषि उसे द्यौ की प्रिया, कभी द्यौ की दुहिता रूप में देखते थे। भावभिव्यक्ति का स्वभाविक प्रवाह, विषयानुसार भाषा आदि दृष्टिकोण से यह गीतिकाव्य का नमूना हो सकती है। इसी प्रकार प्राणसूक्त[13], कामसूक्त[14] आदि में गीतिकाव्य का पूर्वरूप देखा जा सकता है। संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध गीतिकाव्य मेघदूत, अमरूक शतक, श्रृंगारशतक आदि का मूल वेदों में है।

वेद का मुख्य विषय देवस्तुति है। स्तोत्रकाव्य का पूर्णरूप वेद में देखने को मिलता है। वेद के संवादात्मक सूक्तों से नाह्य परंपरा आरंभ हुई। अगस्त्य-इन्द्र संवाद विश्वमित्र-नदी संवाद, यम-यभी संवाद और सरमा-पणि संवाद नाट्यात्मक हैं।

निषकर्षत: स्पष्ट ही है कि वैदिक काव्य अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टि से अत्यंत मनोरम है। वैदिक ऋषि में दैवी दर्शन शक्ति तो है ही, प्रभावपूर्ण वर्णनाशक्ति भीहै। वैदिक काव्य की उदात्त स्थिति स्वत: प्रतिध्वनित है। यह वस्तुत: देवता का काव्य है जो न पुराना पड़ता है और न विनष्ट होता है-पश्म देवस्य काव्यं यो न ममार न जीर्यति। काव्य के रूप में वैदिक काव्य की रमणीयता अपने संदर्भो में अनुघटित ही है। संभवत: राजशेखर रने 'अलंकार' नामक वेदांग का प्रस्ताव भी रखा था-

उपकारकत्वात् अलंकार: सप्तममंगम् इति याथावरीय: ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानात् वेदार्थानवगति:।

सेनापति हरीश्वर का संपूर्ण चरित्र पण्डित के इस कथन से स्पष्ट होता है-

पराक्रमोत्साह-मति-प्रताप-सैशील्य-माधुर्य-नायनयेषु। गाम्भीर्य-चातुर्थ-सुवीर्य-धैर्य हरीश्वरात् कोडम्भधिकोऽस्ति लोके।।

संस्कृत के प्रमुख एकांकी रूपक

संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार काव्य में श्रव्य एवं दृश्य इन दोनों रूपों का समावेश होता है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वादृवत्त्यनश्ननन्यो अभि चाकशीति।।

संस्कृत साहित्य धारा देवनदी की भांति सतत गतिशील रही है। आधुनिक काल में तो इतनी

अधिक साहित्यिक वृद्धि हुई कि उसे संस्कृत साहित्य का स्वर्णिम काल कह सकते हैं। कला साहित्य आधुनिक काल में इसी प्रकार साहित्य सृजना करने वाले कवि हैं डॉ. रामजी उपाध्याय। इनका गद्य काव्य द्वा सुपर्णा कृष्ण को इसका सहनायक माना जा सकता है। अभिनव रूप तस्मिन्नेव दिने मथुरातः कृष्णबलरामौ सान्दीपनेः संस्कृते सममतौ। 'क्षत्रकामी' 'ब्रह्मकामी' प्रकृति-प्रेमी गोपालक गुरुभक्त अनृर्धामी मैत्रीभाव भावुक।

अन्तटिप्पणी

1. तैत्तरीय ब्रह्मण
2. ऋग्वेद 10.71.6
3. ऋग्वेद 1.11.3
4. अथर्ववेद 2.27.6
5. ऋग्वेद 10.71.4
6. अथर्ववेद 5.20.5
7. पाणिनीय शिक्षा 4.1.42
8. अथर्ववेद 19.21.1
9. निरुतक 7.12.
10. ऋग्वेद 3.40.1
11. अथर्ववेद 6.2.1
12. ऋग्वेद 1.13.10
13. अर्थववेद 6.3.1
14. अथर्ववेद 11.4.1
15. तत्रैव 6.2

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. अथर्ववेद सम्पादक विश्वनाथ शास्त्री चौखम्भा ओरियन्टालिया वाराणसी 1997
2. ऋग्वेद सम्पादक जियालाल कम्बोज विद्यानिधि प्रकाशन दिल्ली 2012
3. तैत्तरीयब्राह्मण सम्पादक चुन्नी लाल शुक्ल साहित्य भण्डार मेरठ, 1976
4. नाट्यशास्त्र सम्पादक रेखाप्रसाद द्विवेदी भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला 2005
5. निरुक्त व्याख्याकार कपिलदेव द्विवेदी साहित्य भण्डार, मेरठ
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास बलदेव उपाध्याय उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ 1997